# मूर का सामान्य ज्ञान-समर्थन
## ( Moore's Defence of Common-Sense )

### ( i ) भूमिका

मूर की प्रसिद्धि का एक विशेष कारण यह भी था कि उन्होंने दार्शनिक दृष्टि को सामान्य ज्ञान के अनुरूप निरूपित किया। उन्होंने अपनी वास्तववादी दृष्टि को सामान्य ज्ञान पर बिठाया तथा बिना किसी हिचक सामान्य ज्ञान के अनुरूप ऐसे तर्कों का उपयोग किया जिन्हें पहले से विचारक 'हल्का' कहते। मूर की यह देन है कि उन्होंने सामान्य ज्ञान को दार्शनिक प्रतिष्ठा दी।

वैसे तो उनका सामान्य-ज्ञान समर्थन प्रायः उनके हर लेखों में झलकता है, लेकिन अपने इस विश्वास की स्पष्ट रूप-रेखा उन्होंने अपने लेख 'A defence of Common-sense' में खींची है। वैसे अपने एक भाषण ( जो Proof of an Eternal world के नाम से प्रकाशित लेख है ) में मूर ने इस समर्थन का आधार स्पष्ट किया है, जो आधार भी सामान्य ज्ञान के अनुरूप है। हम यहाँ मूलतः उनके सामान्य ज्ञान समर्थन लेख से ही सामग्री लेंगे। हमारा विवरण उस लेख की अनुकृति नहीं है, उसके पीछे-पीछे नहीं चल रहा। हम उन विचारों को अपने ढंग से व्यवस्थित करने की चेष्टा करेंगे।

वैसे अपने इस लेख के प्रारम्भ में ही मूर दो प्रकार की प्रस्तावनाएँ प्रस्तुत करते हैं। पहले प्रकार की प्रस्तावना के विषय में कहते हैं कि वे सभी ऐसी ही प्रस्तावनाएँ हैं जिनके विषय में हम जानते हैं कि वे निश्चित रूप में सत्य हैं। इन उदाहरणों में प्रस्तावनाओं की एक लम्बी सूची प्रस्तुत की गयी है। दूसरे प्रकार की प्रस्तावना वस्तुतः एक ऐसी प्रस्तावना है जिसे भी वे निश्चित रूप से सत्य जानते हैं, किन्तु जो एक प्रकार से पहले प्रकार की प्रस्तावना के बाद ही प्रस्तुत किया जा सकता है। वह प्रस्तावना यह है कि हम यह भी जानते हैं कि जैसी प्रस्तावनाओं को हम सत्य मानते हैं—जिनहें पहले उदाहरण में बताया गया है—उन्हीं प्रस्तावनाओं के अनुरूप प्रस्तावनाओं को अन्य लोग भी निश्चित रूप से सत्य मानते रहे हैं। वस्तुतः इन प्रस्तावनाओं में मूर के सामान्य ज्ञान प्रस्तावना का उदाहरण मिलता है, तथा इन्हीं उदाहरणों के आधार पर मूर अपनी विवेचना प्रस्तुत करते हैं। यह कहते हुए कि कम से कम दूसरे प्रकार की प्रस्तावनाओं के सम्बन्ध में अन्य दर्शन-शास्त्री मूर से सहमत नहीं है, हम आगे इन दोनों प्रकार की प्रस्तावनाओं का उदाहरण लेते हुए मूर के विचारों को प्रस्तुत करेंगे।

### ( ii ) सामान्य-ज्ञान समर्थन की पृष्ठभूमि

वैसे यह प्रश्न प्रारम्भिक है कि मूर कैसे अपने सामान्य-ज्ञान समर्थन की आवश्यकता

Scanned with CamScanner

को महत्त्वपूर्ण मानते है? उस समय के प्रबल प्रत्ययवादी तत्त्वमीमांसा से वे कुछ ऐसे हतप्रभ थे कि प्रतिक्रिया-स्वरूप वे सामान्य-ज्ञान का पोषण आरम्भ कर देते है। उस प्रकार के दर्शन की परम्परा यही रही है कि वे गहन-गूढ़ विचारों एवं तर्कों का आविष्कार करते है, जिसे हमारी सामान्य बुद्धि पकड़ भी नही पाती। वैसे तर्क अकाट्य दिखाई देते है, उनकी गहन बौद्धिकता से बुद्धि प्रभावित ही नही, चकाचौध हो जाती है। किन्तु, साथ-साथ सामान्य जीवन से वे कुछ हटे हुए प्रतीत होते है, सामान्य जीवन के लिए उनकी कोई प्रासंगिकता दिखायी नही देती। उन्नीसवीं शताब्दी तथा बीसवीं शताब्दी के पहले दशक में तो दर्शन का यह ढंग प्रचण्ड रूप से उभरा। उदाहरणतः काल एवं गति के विरुद्ध जिस प्रकार के तर्क पाश्चात्य दर्शन के प्रारम्भिक चरण में 'जैनों' आदि के द्वारा उठाये गये थे, कुछ उसी प्रकार के तर्क ब्रैडले के द्वारा उठाये गये। तर्कों में जो भी तार्किकता हो, मूर को यह सब बड़ा विचित्र लगता है। हम तर्कों के द्वारा यह सिद्ध करते हैं कि 'गति' संभव नहीं है, और हर क्षण हम गतिशील वस्तुओं को देखते हैं, स्वयं भी गति में रहते हैं, गति का सामान्य अनुभव करते है। अतः मूर को ऐसे तर्कों में कोई महत्त्व दिखाई नहीं देता।

इसके प्रतिकार का एक सामान्य ढंग तो यह होता कि इन तर्कों का सीधा खंडन किया जाता। किन्तु, मूर को वह ढंग नहीं भाता, एक तो इस कारण कि वह तो अनन्त प्रक्रिया होगी, आपत्तियाँ, उत्तर, प्रत्युत्तर की अनन्त शृंखला खड़ी हो जायगी। दूसरा यह कि वह ढंग तो उन विचारकों का है जिनके विरुद्ध खण्डन प्रस्तुत करना है। वहाँ तो यह दिखाना है कि उनके दर्शन का ढंग ही जीवन तथा सामान्य ज्ञान के लिए अप्रासंगिक है। इसके लिए मूर का कहना है कि आवश्यकता है कि सबल ढंग से सामान्य सहज-ज्ञान को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न हो, स्पष्ट रूप से तथा सीधे ढंग से उनसे कह दिया जाय कि उनके बौद्धिक तर्क हमारे सामान्य जीवन के लिए निरर्थक हैं। यही कारण है कि ब्रिटिश अकादमी में 1939 में अपने दिये गये भाषण में, (जो उनके 'Philosophical papers' में 'Proof of an External World' के नाम से छपा है) मूर बड़े सरल एवं स्पष्ट ढंग से ऐसे विचित्र विचारों के खण्डन का अपना ढंग स्पष्ट कर देते हैं। वे कहते हैं कि बाह्य वस्तुओं के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए तर्क-युक्ति देने की आवश्यकता ही नहीं है। मैं स्पष्ट ढंग से अभी यह सिद्ध कर सकता हूँ कि दो मानवीय हाथ 'हैं'। मैं अपना बायाँ हाथ उठाकर तथा पुनः दायाँ उठाकर दिखा सकता हूँ कि ये दोनों है। इससे अधिक तर्क को आवश्यकता नहीं है। यह इतना सरल तथा स्पष्ट है कि जो विचार इसे नहीं स्वीकार सकता वह विचार ही दोषपूर्ण है। मूर के अनुसार इस सामान्य-ज्ञान के स्तर पर किसी दर्शन को अपनी युक्तियों का आधार प्रदान करने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार का सामान्य सहज-ज्ञान अपनी प्रामाणिकता स्वयं प्रस्तुत करता है। इस प्रकार मूर दर्शन के प्रचलित बौद्धिक जटिलताओं के विरुद्ध एक साफ-सुथरा स्पष्ट सामान्य सहज-ज्ञान का संगत ढंग प्रस्तुत करने का संकल्प करते है। उन्हें यह कहने में कोई संकोच नहीं कि ऐसा तर्क जो इस सामान्य-ज्ञान के अनुरूप विश्वासों के विरुद्ध जाता है, उसे मान्यता देने की आवश्यकता नहीं।

### (iii) सामान्य-ज्ञान क्या है?

अब हम यह स्पष्ट करने की चेष्टा करें कि मूर सामान्य-ज्ञान (Common sense) से क्या समझते है? मूर अपने लेख 'A defence of Common sense' के प्रारम्भ में ही ऐसे उदाहरण देते हैं जो उनके अनुसार, सामान्य-ज्ञान के अनुरूप विश्वास है। उनका कहना

Scanned with CamScanner

है कि वे सभी प्रतिज्ञाप्तियाँ ऐसी है जिनके विषय में निश्चित रूप से जानते है कि वे सत्य है। **'जानना'** 'सत्य' आदि का सहज-ज्ञान के अनुरूप अर्थ तो शीघ्र ही स्पष्ट हो जायेगा, किन्तु, वे बार-बार इस बात पर जोर देते है कि जिन प्रतिज्ञप्तियों का वे उदाहरण दे रहे है, उनके सत्य होने में उन्हें कोई संदेह नहीं। उन्होंने दो प्रकार की प्रतिज्ञाप्तियों का उल्लेख किया है। प्रथम प्रकार की प्रतिज्ञप्तियों के अन्तर्गत वे प्रतिज्ञप्तियों की एक लम्बी सूची देते है, जिनके विषय में उनका कहना है कि इनमें प्रत्येक के विषय में वे निश्चित रूप से जानते है कि वे सत्य हैं। उनमें से कुछ प्रतिज्ञप्तियाँ इस प्रकार की है—मैं जानता हूँ कि मेरा शरीर है। यह किसी निश्चित समय में पैदा हुआ था, तथा तब से अस्तित्ववान् है। इसमें परिवर्तन भी होते रहे है—पहले यह 'छोटा' था। जब से यह शरीर है, तभी से इसका सम्पर्क कुछ ऐसी वस्तुओं से है जो धरती पर हैं या धरती के निकट हैं। ऐसी वस्तुएँ उसके वातावरण के अंग हैं। ( उदाहरणतः अभी मेरे हाथ में एक कलम है )। मैं यह भी निश्चित रूप से जानता हूँ कि मेरे शरीर जैसे अन्य शरीर भी हैं, जो किसी निश्चित समय में पैदा होकर तब से अस्तित्ववान् हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि जिस धरती पर मेरा शरीर है—वह भी मेरे शरीर के पैदा होने के पहले से अस्तित्ववान् हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि मैं एक मानव हूँ जिसे भिन्न-भिन्न कालों में भिन्न-भिन्न ढंग के अनुभव होते रहे हैं, आदि आदि।

इन प्रतिज्ञाप्तियों के अतिरिक्त मूर एक दूसरे प्रकार की प्रतिज्ञप्ति का भी उदाहरण देते हैं, जो उदाहरण इन प्रथम प्रकार के उदाहरण देने के पश्चात् ही दिया जा सकता है। दोनों उदाहरणों में भिन्नता बस इतनी ही है कि प्रथम उदाहरणों में वैसी प्रतिज्ञप्तियाँ रखी गयी हैं जो मैं **अपने सम्बन्ध** में जानता हूँ कि सत्य हैं। दूसरे प्रकार की प्रतिज्ञप्ति वैसा उदाहरण है जिसमें मैं जानता हूँ कि वे **अन्य के सम्बन्ध** में सत्य हैं। मैं यह भी निश्चित रूप से जानता हूँ कि प्रथम उदाहरण में दी गयी जैसी प्रतिज्ञप्तियों को मैं अपने विषय में जानता हूँ, वैसी प्रतिज्ञप्तियों को हर अन्य व्यक्ति अपने विषय में उसी ढंग से जानता है। जैसे मैं जानता हूँ कि ये दो हाथ मेरे हैं, मैं यह भी जानता हूँ कि अन्य व्यक्ति भी उसी ढंग से जानता है कि उसके हाथ उसके हैं। स्पष्ट है, कि ये सभी उदाहरण मूर को प्रायः स्वतः सिद्ध ( Truism ) प्रतीत होते हैं। उनके अनुसार इन पर विश्वास ऐसा है कि हम निश्चित, निस्संदेह रूप में जानते हैं कि वे सत्य हैं ही।

अब हम इन उदाहरणों को ध्यान में रखें, तथा उसके अनुरूप यह समझने की चेष्टा करें कि मूर के अनुसार सामान्य-ज्ञान क्या है। इसे समझने के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। इनके आधार पर सामान्य-ज्ञान के तात्पर्य को स्पष्ट करेंगे, तथा बाद में उसकी **विशिष्टताओं** को। इन **दोनों** के विवरण के बाद ही इसका स्वरूप पूर्णतया स्पष्ट होगा—

( क ) उपर्युक्त उदाहरणों को दखकर इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि मूर के अनुसार सामान्य-ज्ञान के विश्वास वे विश्वास हैं, जिनमें **प्रायः** हर व्यक्ति विश्वास करता है। उदाहरणतः 'यह शरीर मेरा शरीर है'—ऐसा विश्वास प्रायः हर व्यक्ति करता ही है।

( ख ) इसका यह अर्थ नहीं कि बहुमत वाले सभी विश्वास सामान्य-ज्ञान के विश्वास हैं। बहुमत वाले विश्वासों को प्रचलित धारणा( Public Opinion )कहा जा सकता है। इसके अंतर्गत अनेक अंधविश्वास भी आ सकते हैं। सामान्य-ज्ञान के अनुरूप विश्वास प्रचलित धारणा से भिन्न कोटि का विश्वास है। यह मतों के द्वारा या अन्य किसी प्रकार से **लादा** नहीं जाता। इस विश्वास में सहजता है—स्वाभाविकता है जो प्रचलित धारणाओं में नहीं।

Scanned with CamScanner

( ग ) इस प्रकार के विश्वास की एक विशेष बात यह है कि जिसे यह विश्वास है, वह अपने सामान्य जीवन में सदा इस विश्वास के अनुरूप ही चलता है। उदाहरणतः यह विश्वास कि 'यह मेरा हाथ है' हमारे विश्वास का प्रायः नियत—सतत् अंग है। ऐसा नहीं कि हम किसी क्षण इस विश्वास को छोड़ भी देते हैं।

( घ ) मूर के अनुसार इन उदाहरणों से ही स्पष्ट हो जाता है कि इन सामान्य-ज्ञान-विश्वासों पर हमारा सामान्य जीवन आधारित रहता है। यदि इनमें हम विश्वास न करें, तो हमारा जीवन चल ही नहीं सकता।

( ङ ) मूर के विवेचन से एक और बात स्पष्ट होती है। जब मूर कहते हैं कि 'प्रायः' हर व्यक्ति ऐसा विश्वास करता ही है, तो 'प्रायः' शब्द की विशिष्टता स्पष्ट होती है तथा 'हर व्यक्ति' की सीमा भी। ऐसा लगता है कि 'हर व्यक्ति' से मूर का तात्पर्य 'सामान्य बुद्धि वाले सामान्य वयस्कों' से है। यदि कोई शिशु या बच्चा इन विश्वासों को नहीं रखे तो यह सामान्य-ज्ञान का विरोधी उदाहरण नहीं हुआ। उसी प्रकार पागल या विकृत मस्तिष्क वालों का उदाहरण देकर यदि यह कहा जाय कि ऐसे लोगों का वैसा विश्वास नहीं भी हो सकता तो यह मूर की बातों का खण्डन नहीं होता। मूर स्पष्ट तो नहीं कहते, किन्तु उनकी बातों से स्पष्ट हो जाता है कि 'हर व्यक्ति' के अन्तर्गत मूर इन लोगों को नहीं रखते।

( च ) उपर्युक्त तथ्य का एक स्पष्ट प्रमाण यह है कि मूर के अनुसार बिना ऐसे विश्वासों को धारण किये कोई व्यक्ति समाज का **सामान्य** व्यक्ति नहीं हो सकता। मूर स्पष्ट तो ऐसा नहीं कहते, किन्तु उनका तात्पर्य प्रायः स्पष्ट है—यदि कोई व्यक्ति यह कहे कि उसे विश्वास नहीं कि उसका शरीर 'है' तो उसकी मानसिक स्वस्थता पर संदेह उत्पन्न हो जायगा।

( छ ) मूर का कहना है कि इन विश्वासों की विशेषता इस बात में है कि इनमें किसी प्रकार का व्यामिश्र या अनेकार्थकता नहीं होती। 'मैं जून में पैदा हुआ था', 'इस पुस्तक की जिल्द नीली है,' 'दिल्ली एक महानगर है'—इन सामान्य-ज्ञान के अनुरूप प्रतिज्ञप्तियों में मूर को किसी प्रकार की अनेकार्थकता दिखायी नहीं देती।

( ज ) पूछा जा सकता है कि यदि इस प्रकार के सामान्य-ज्ञान विश्वास इतने केन्द्रीय हैं, तो इनकी जानकारी कैसे होती है? मूर इस प्रश्न का उत्तर भी सामान्य-ज्ञान के अनुरूप ही देंगे। उनकी ओर से कहा जा सकता है कि सामान्य-ज्ञान तथा वैसे विश्वासों को प्राप्त करने की कोई निश्चित विधा नहीं है, कम-से-कम वैसा कोई निर्देश नहीं दिया जा सकता। यदि इनकी प्राप्ति की कोई निश्चित विधा तय कर दी जाय, तो उस प्रकार का ज्ञान 'विशेष' ज्ञान होगा, मूर के अर्थ में सामान्य-ज्ञान नहीं।

( झ ) फिर भी, मूर की ओर से कहा जा सकता है कि इनकी जानकारी सामान्यतः 'साक्षात् जानकारी ही है। हम अपने सामान्य जानकारी के ढंगों से ही अधिकतर ऐसे विश्वासों को प्राप्त करते हैं। कुछ ऐसे विश्वास साक्षात् ज्ञान के साक्ष्य पर भी उपलब्ध होते हैं। किन्तु, यह सब उस ज्ञान की उपलब्धि के सामान्य विवरण ही हो सकते हैं, उनके प्राप्त होने की कोई निश्चित विधि नहीं।

( ञ ) किन्तु इनकी जानकारी के सम्बन्ध में मूर एक महत्त्वपूर्ण लक्षण का निर्देश करते हैं। उनका कहना है कि यदि हम किसी विश्वास के सम्बन्ध में जानते हैं कि वह विश्वास सामान्य-ज्ञान विश्वास है, तो हम यह भी मानते हैं कि वह सत्य है। मूर के अनुसार इसका यह अर्थ भी नहीं कि ऐसे विश्वासों का सत्य होना मेरे जानने पर निर्भर है—यह जानने

Scanned with CamScanner

पर कि वे विश्वास सामान्य-ज्ञान विश्वास हैं। नहीं, उपर्युक्त लक्षण का यह अर्थ लेना मूर के मतानुकूल नहीं है। उनका अर्थ मात्र इतना ही है कि यदि कोई विश्वास सामान्य-ज्ञान विश्वास है, तो वह सत्य है।

( ट ) उपर्युक्त लक्षण के आधार पर सामान्य-ज्ञान के सम्बन्ध में एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आता है। इन विश्वासों की विशिष्टता यह है कि इनमें एक विचित्र प्रकार की बाध्यता है। हम इन्हें स्वीकारे बिना रह नहीं सकते, यदि इन्हें हम अस्वीकारने का स्पष्ट प्रयत्न करें, तो अनेक प्रकार की विसंगतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। उन विसंगतियों के विषय में कुछ स्पष्टीकरण आगे होगा, किन्तु, इतना तो कहा ही जा सकता है कि उन विसंगतियों की संभावना से यह तो स्पष्ट ही होता है कि इन विश्वासों को एक प्रकार से हमें सत्य मानना ही पड़ता है।

( ठ ) इस स्थल पर मूर एक और स्पष्टीकरण करते हैं। इन विश्वासों के विरुद्ध कहा जा सकता है कि ये विश्वास पूर्णतया स्पष्ट कभी नहीं रहते। इनमें अनेकार्थकता तथा व्यामिश्र की संभावना रहती ही है। उदाहरणतः मूर ने इन विश्वासों के उदाहरणस्वरूप ऐसी उक्ति का भी उल्लेख किया है, जैसे, 'यह धरती सदियों से है।' अब आलोचक कह सकतते हैं कि यह उक्ति वैसा स्पष्ट नहीं है जैसा मूर समझते हैं। 'सदियों से है' को विभिन्न व्यक्ति विभिन्न ढंग से समझ सकते हैं। किन्तु, मूर इसी प्रकार की आपत्तियों का निराकरण करने के लिए '**अवबोध**' ( Understanding ) तथा **पूर्ण जानकारी** ( wholly knowing ) में भेद करते हैं। सामान्य-ज्ञान विश्वासों ( Common sense Beliefs ) का **सामान्य ज्ञान के स्तर पर** हमें **अवबोध** रहता है, उसकी पूरी जानकारी नहीं रहती। हम उन्हें **समझ** जाते है, यह पकड़ लेते हें कि क्या कहा जा रहा है, किन्तु उसकी व्याख्या-उसका विश्लेषण ( Analysis ) नहीं कर सकते। सामान्य-ज्ञान के स्तर पर उपर्युक्त उक्ति 'यह धरती सदियों से है' के अवबोध में कोई कठिनाई नहीं, हर कोई जो इसे सुनता है, समझ जाता है कि क्या कहा जा रहा है। इस स्तर पर अनेकार्थकता तथा व्यामिश्र का प्रश्न ही नहीं। वह प्रश्न तो तब उठता है जब हम इस उक्ति के अर्थ का स्पष्टीकरण चाहते हैं। उसके लिए इसकी **पूरी** जानकारी होनी चाहिए, जो सामान्य-ज्ञान के स्तर पर संभव नहीं।

### ( iv ) सामान्य-ज्ञान को स्वीकारने के कुछ प्रमुख आधार

अभी सामान्य-ज्ञान की कुछ अन्य विशिष्टताओं का विवरण बाकी है। किन्तु, उसके **पहले इस बात पर विचार कर लेना** अनिवार्य है कि सामान्य ज्ञान को ऐसा महत्त्व देने का मूर के लिए आधार क्या है? उनकी क्या बाध्यता है इन विश्वासों को सत्य मानने में? हम देखेंगे कि इन **आधारों** के स्पष्टीकरण के द्वारा सामान्य-ज्ञान की कुछ अन्य विशिष्टताएँ स्पष्ट होगीं—

( I ) वैसे मूर स्पष्ट रूप में ऐसा कहते तो नहीं, किन्तु यह प्रायः स्पष्ट ही है कि सामान्य-ज्ञान विश्वासों को स्वीकारने के पीछे यह धारणा अवश्य है कि जिन आधारों पर उन्हें स्वीकारा जाता है वे यथेष्ट ( Sufficient ) है। वे यथेष्ट इस कारण हैं कि अपने जीवन के सम्पूर्ण अनुभव में हम इन विश्वासों को मानकर **सफल** रूप में कार्य करते रहे है। कभी-कभी भ्रम-भ्रान्ति होती है, किन्तु उससे यह विश्वास खण्डित नहीं होता—क्योंकि सामान्य-ज्ञान के अनुरूप इनका अर्थ इतना ही है कि उस उदाहरण में हमारा प्रत्यक्षात्मक निर्णय ध्यानपूर्वक नहीं किया गया। ध्यान से देखने पर भ्रान्ति समाप्त हो जाती है। इस स्तर पर अनुभव अपना प्रामाण्य स्वयं उपस्थित कर देता है।

Scanned with CamScanner

( 2 ) मूर के अनुसार इन विश्वासों को स्वीकार करने का सबसे सरल एवं स्पष्ट आधार है—इन विश्वासों की सार्वभौमता। 'यह मेरा हाथ है', 'यह एक कलम है', 'मेरे समक्ष कागज है'—इस प्रकार का विश्वास हर व्यक्ति करता ही है।

( 3 ) इन्हें स्वीकारने का एक अन्य आधार यह भी है कि यदि इन्हें 'नकारने' अथवा 'इनके खण्डन' का प्रयत्न होता है, तो वैसे प्रयत्न सामान्य जीवन के ढंगों से हटे हुए प्रतीत होते है। इनके निषेधों के प्रयत्न में निहित यही कठिनाई भावात्मक रूप में इन्हें स्वीकारने के लिए बाध्य करता है। इन्हें माने बिना हमारा जीवन चल ही नहीं सकता। यही तो इसके स्वीकारने के पीछे की बाध्यता है।

( 4 ) इस प्रकार की बाध्यता को और स्पष्ट करते हुए मूर कहते हैं कि इनको स्वीकारने के पीछे जो अनिवार्यता दिखायी देती है, वह इस कारण भी है कि इनके अस्वीकारने में अनेकों प्रकार की विसंगतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। दर्शन के इतिहास में ऐसे अनेकों विचार का उदाहरण दिया जा सकता है जिनमें ऐसे विश्वासों को अस्वीकारने या नकारने का प्रयास किया गया है। उन्हीं उदाहरणों के द्वारा दिखाया जा सकता है कि उन प्रयासों में कैसी विसंगतियाँ उत्पन्न होती हैं। उदाहरणतः कुछ विचारकों ने 'काल' के विरुद्ध बड़े सबल तर्क दिये हैं। विसंगति यह है कि वे भूल जाते हैं कि जिसका वे खण्डन कर रहे हैं, उसे वे सदा-उस खण्डन-प्रक्रिया में भी स्वीकारे हुए हैं क्योंकि उनका तर्क भी किसी काल में ही दिया जा रहा है। पुनः ह्यूम जैसे संशयवादी ज्ञान की संभावना पर ही संशय करते हैं। किन्तु, उनके इस विचार में निहित विसंगति यह है कि उन्हें यह **ज्ञान** तो है ही कि ज्ञान संभव कैसे नहीं है। इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि सामान्य-ज्ञान के खण्डन का प्रयत्न प्रायः आत्म-व्याघातक हो जाता है, क्योंकि इस प्रयत्न में जिसका खण्डन हो रहा है, उसे पहले से माना हुआ है। यही तो बाध्यता है सामान्य-ज्ञान को स्वीकारने की। इसके निषेध का प्रयत्न कुछ इसी प्रकार का होगा जैसा हम अंगरेजी में बात करते हुए कहें कि मैं अंगरेजी नहीं बोल सकता।

( 5 ) मूर के अनुसार इस बाध्यता का एक अन्य आधार और है। इन्हें नहीं मानने में एक व्यवहारिक उपयोगितावादी आत्म-विरोध ( Pragmatic Contradiction ) उत्पन्न होता है। यहाँ व्यावहारिकता का अर्थ व्यावहारिक जीवन से है। इसके पहले जिन विसंगतियों की ओर संकेत किया गया था, वे वैचारिक विसंगतियाँ थीं। अब जिस आत्म-विरोध की बात हो रही है, वह व्यावहारिक जीवन पर आधृत है। मूर का तात्पर्य है कि इन सामान्य-ज्ञान-विश्वासों की बाध्यता का आधार यह भी है कि इन्हें नहीं मानने से जीवन जीने में व्याघात उत्पन्न होता है। विवशता यह है कि इन्हें हमें स्वीकारना ही पड़ता है। भौतिक वस्तुओं को, अपने आपको स्वीकार ही करना पड़ता है। इनकी सत्यता हम नहीं स्वीकारें तो न हम खा-पी सकते है, न जीवन का कोई कार्य सम्पन्न कर सकते हैं। हर पल तो हमारा जीवन इन भौतिक वस्तुओं की सत्यता को मानकर ही चलता है। इतना ही नहीं, यदि इन्हें हम नहीं स्वीकारें, तो इस 'अस्वीकार' का 'निषेध' का जो आधार है, वह स्वयं निषेधित हो जाता है, क्योंकि तब तो हम अपने को भी सत्य नहीं मान सकते। तो निषेध या अस्वीकार करनेवाला ही नहीं रह जाता। इसी विवशता के कारण मूर कहते है कि यदि कोई विश्वास सामान्य-ज्ञान विश्वास है तो उसे हमें सत्य मानना ही पड़ता है।

( 6 ) इस सामान्य-ज्ञान-विश्वासों को स्वीकारने के पीछे एक सबल आधार यह भी है

Scanned with CamScanner

कि मूर के अनुसार हम निरीक्षण कर देख भी सकते है कि ये विश्वास सत्य हैं। 'मेरे समक्ष एक उजला कागज है', 'यह मेरा शरीर है'—इन वाक्यों की स्वतः सिद्धता निरीक्षण से ही स्पष्ट है।

इन्हीं आधारों पर मूर कहते हैं कि सामान्य-ज्ञान के कथनों को स्वीकारने के पीछे एक विवशता है, बाध्यता है।

### ( v ) सामान्य-ज्ञान के स्वरूप की कुछ विशिष्टताएँ

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर अब हम सामान्य-ज्ञान की मूर के द्वारा बतायी गयी कुछ अन्य विशिष्टताओं का उल्लेख करेंगे जिससे सामान्य-ज्ञान का स्वरूप और स्पष्ट होगा।

( 1 ) सर्वप्रथम यह सपष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि जब मूर सामान्य-ज्ञान विश्वासों के सम्बन्ध में कहते हैं कि मैं निश्चित रूप से जानता हूँ कि वे सत्य हैं, तो यहाँ 'निश्चित', 'जानना', 'सत्य' आदि शब्दों का प्रयोग भी सामान्य-ज्ञान के अनुरूप हो रहा है। यदि इन शब्दों के विशेष या विशिष्ट अर्थो का हवाला देकर सामान्य-ज्ञान के खण्डन का प्रयत्न होता है, तो मूर के अनुसार वैसे प्रयत्न सटीक नहीं हो सकते। साधारणतः जिस प्रकार हमें सामान्य वस्तुओं की जानकारी होती है, वैसी ही जानकारी की बात मूर कर रहे हैं। यह ठीक है कि इस जानकारी में पूर्णतया याथातथ्य जानकारी नहीं है, यह वैज्ञानिक जानकारी नहीं। यह **सामान्य**-ज्ञान है, अतः इसकी निश्चितता भी उसी संदर्भ तक सीमित है।

( 2 ) इसी कारण मूर कहते हैं कि यदि कोई कहे कि इन विश्वासों को **सिद्ध** कैसे किया जा सका है तो यह स्वीकारना पड़ेगा कि इन्हें सिद्ध नहीं किया जा सकता। बल्कि वे तो यह भी कहते हैं कि चपल युक्तियों के द्वारा इनमें से बहुत-से विश्वासों को असिद्ध भी किया जा सकता है। उनमें से कुछ विश्वास शायद गलत भी सिद्ध हो जायें। किन्तु, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। मूर का कहना है कि हमारे सामान्य-ज्ञान अनुरूप विश्वासों के संबंध में हम यह मान कर चलते हैं कि वे सत्य हैं।

( 3 ) इन विश्वासों का आधार कोई अनुभव-आश्रित **अनुमान** भी नहीं है। वैसा होता है। वैसा होता तो ये विश्वास कुछ अन्य स्वतःसिद्ध प्रस्तावनों के आधार पर निकाले गये होते। किन्तु, वैसा इनका कोई अनुमान-जन्य आधार भी नहीं। ये सहज रूप में स्वीकारे जाते हैं।

( 4 ) इसी आधार पर इनके अवबोध ( Understanding ) तथा इनकी पूर्ण जानकारी ( Wholly Knowing ) में भेद किया गया है। जिनकी हमें पूर्ण जानकारी रहती है उनका हम पूर्ण विश्लेषण ( Analysis ) कर सकते हैं, उसका हर प्रकार का स्पष्टीकरण कर सकते है। सामान्य-ज्ञान विश्वासों का हम विश्लेषण नहीं कर सकते, उनमें निहित भावों का स्पष्टीकरण भी नहीं कर सकते। इनका हमें मात्र सामान्य अवबोध होता है।

( 5 ) इसी कारण मूर कहते हैं कि सामान्य-ज्ञान विश्वास एक प्रकार का आद्य ( ultimate ) तो हैं, किन्तु वे तार्किक दृष्टि से अनिवार्य नहीं है। ( not logically necessary )। इनकी आद्यता इस तथ्य पर है कि हमारा जीवन इन विश्वासों के आधार पर ही चलता है, किन्तु, इसकी इस अनिवार्यता को तर्कतः स्थापित नहीं किया जा सकता। हम युक्तियों के द्वारा इनकी आद्यता का निर्देश नहीं कर सकते।

( 6 ) उपर्युक्त विशिष्टताओं के अनुरूप मूर सामान्य-ज्ञान की एक अन्य विशिष्टता की ओर भी संकेत करते हैं, जो मूर के दर्शन में जितना महत्त्व रखता है, उससे बहुत

Scanned with CamScanner

अधिक महत्त्व उसका बाद के दर्शन के लिए हो जाता है। मूर स्वीकारते हैं कि सामान्य-ज्ञान की अभिव्यक्ति साधारण भाषा ( Ordinary Language ) में होती है। साधारण भाषा से उनका तात्पर्य उस भाषा से है जिसका प्रयोग हम दैनिक जीवन में सामान्य बोलचाल में करते है। जैसा हमने ऊपर देखा है मूर अपने विचारों में एक सामान्य भेद तो करते ही हैं। उनके अनुसार किसी कथन के साधारण अर्थ की समझ एक अलग बात है तथा उस अर्थ के विश्लेषण करने योग्य जानकारी एक भिन्न बात है। सामान्य-ज्ञान के स्तर पर हमें कथनों के साधारण अर्थ की समझ मात्र होती है, उस स्तर से हम उन अर्थों का विश्लेषण नहीं कर सकते। इसका तात्पर्य हुआ कि सामान्य-ज्ञान का संबंध कथनों के साधारण अर्थ से हे। ये साधारण अर्थ में ही हैं जिनके अनुरूप हम दैनिक जीवन में बोलचाल करते हैं। अर्थात् ये साधारण अर्थ साधारण भाषा के अर्थ हैं। अतः सामान्य-ज्ञान ( Common-sense ) तथा साधारण भाषा ( Ordinary language ) एक दूसरे के साथ जुटे हैं। इसी दृष्टि से ऐसे वाक्य जैसे 'मैंने सुबह नास्ता किया है', 'मैं अभी सफेद कागज पर लिख रहा हुँ'—साधारण भाषा के वाक्य हैं, तथा सामान्य-ज्ञान के अनुरूप हैं। यदि हम इसमें व्यवहृत उक्तियों पर प्रश्न उठाना प्रारम्भ करें—( जैसे यह पूछें कि आप यह कैसे कह सकते हैं कि आप जिस पर लिख रहे हैं वह कागज है ), तो इसका अर्थ हो जाता है कि हम सामान्य-ज्ञान एवं साधारण भाषा के परे जा रहे हैं।

मूर ने सामान्य-ज्ञान का संबंध साधारण भाषा से सहज रूप में दिखाया था। किन्तु बाद के दर्शन में साधारण भाषा, उक्तियों का साधारण प्रयोग-व्यवहार आदि प्रश्न दर्शन के केन्द्रीय प्रश्न बनकर उजागर हुए। ब्रिटेन में तो एक विशिष्ट साधारण भाषा दर्शन ( Ordinary language Philosophy ) का ही उद्भव हो गया। अतः बाद के विचारकों को मूर के द्वारा साधारण भाषा का उल्लेख, एक आकस्मिक विचार नहीं प्रतीत हुआ बल्कि एक महत्त्वपूर्ण बात प्रतीत हुई। अतः अनिवार्य हो जाता है कि मूर के विचारों में सामान्य-ज्ञान तथा साधारण भाषा का जो संबंध दर्शाया गया है, उसकी विशिष्टता को और स्पष्ट किया जाय।

मूर ने सामान्य-ज्ञान के अनुरूप कथनों अथवा उक्तियों के साधारण भाषीय प्रयोगों का आधार अनेक स्थानों पर स्वीकारा है। सामान्य ढंग से तो यह कहा ही जा सकता है, सामान्य-ज्ञान विश्वासों के जिन उदाहरणों का मूर उल्लेख करते हैं वे सभी साधारण भाषीय उक्तियाँ हैं। 'ये मेरे हाथ है', 'यह एक उजला लिफाफा है'—ऐसी उक्तियों में सामान्य-ज्ञान तथा साधारण भाषा एक-दूसरे के पूरक प्रतीत होते हैं। इनके अतिरिक्त मूर ने साधारण भाषीय व्यवहारों का उपयोग अन्य स्थलों पर किया है। जब भी वे तत्त्व-दार्शनिकों की भाषा की विचित्रता के पीछे जाने का प्रयत्न करते हैं तो उनके विश्लेषण के उपकरणों में भाषा के साधारण उपयोग का योगदान रहता ही है। उदाहरणतः अपने नीति-दर्शन में, विशेषतः ( Principia Ethica ) में जब वे 'शुभ' ( good ) का विश्लेषण करते हैं, अथवा सुखवाद की समर्थक युक्तियों की परीक्षा करते हैं, अथवा उनके कथनों का अर्थ समझने का प्रयत्न करते है तो प्रायः सदा ही उनका आधार साधारण भाषा तथा कथनों के साधारण भाषीय प्रयोग ही रहे हैं। अतः इतना तो स्पष्ट ही हो जाता है कि मूर जब **सामान्य-ज्ञान** एवं **साधारण भाषा** को एक दूसरे से सम्बन्धित करते हैं, तो यह मात्र कोई आकस्मिकता नहीं, यह संबंध ऊपर-ऊपर का संबंध नहीं, मूर के विचारों में यह संबंध पारस्परिक निर्भरता जैसा कुछ सम्बन्ध है।

Scanned with CamScanner